महर्षि अत्रि एवं अनसूया की शिवोपासना

दक्षिण दिशा में चित्रकूट पर्वत के समीप परम पावन कामद नाम का एक वन था। ब्रह्माजी के मानसपुत्र महर्षि अत्रि अपनी परम पतिव्रता पत्नी अनसूया के साथ उसी वन में निवास करते हुए भगवान् महेश्वर की आराधना में अपने समय का सदुपयोग कर रहे थे। एक बार ऐसा हुआ कि सौ वर्षोंतक बिलकुल ही वर्षा नहीं हुई। पृथिवी जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों से विहीन हो गयी। अन्न तथा जल के अभाव में सर्वत्र महान् हाहाकार व्याप्त हो गया। समस्त संसार अत्युग्र ताप से जलने लगा। महर्षि अत्रि उस समय भी समाधि में, भगवान् शंकर में अपने आत्मा को लगाये हुए परमानन्द में मग्न थे। गुरुजी को ध्यानमग्न देख तथा अन्न आदि के अभाव में क्षुधा से पीड़ित होने के कारण शिष्य भी वहाँ से अन्यत्र चले गये। अब केवल अनसूया ही उस निर्जन वन में रह गयीं। वे भला अपने पति को ऐसी अवस्था में छोड़कर कहाँ जा सकती थीं। ऐसे समय में पति की परिचर्या और महादेवजी की आराधना को ही उन्होंने इस भंयकर आपत्ति से बचने का एकमात्र उपाय समझा।

अनसूया ने पतिदेव के समीप ही एक सुन्दर पार्थिव लिङ्ग की स्थापना की और अवर्षण के कारण अन्य किसी उपचार के न मिलने से वे मानस उपचारों द्वारा भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करने लगीं। इस तरह उनका पूजनकर हाथ जोड़कर भगवान् शंकर और अपने पति की परिक्रमा करतीं और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करती थीं। अन्न-जल का उन्होंने बिलकुल परित्याग कर दिया। इन दोनों देवों की उपासना ही उनका एकमात्र कार्य रह गया था।

अत्रि के तप और अनसूया की आराधना से सभी देवता तथा ऋषि आश्चर्य करने लगे और दर्शन करने के लिये वहाँ आये। गङ्गा आदि पवित्र नदियों को भी आश्चर्य हुआ और वे भी वहाँ आ पहुँचीं।

सभी देवगण तथा मूर्तिमती पुण्यतोया गङ्गा आदि नदियाँ दोनों के त्याग, सेवा, तपस्या की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। कुछ समय के बाद अन्य सभी देवता, ऋषि-महर्षि तो चले गये, किन्तु गङ्गा माता और भगवान् महादेव वहीं रुक गये। भगवती गङ्गा अनसूया के पातिव्रत-धर्म तथा शिव-सेवा में अनन्य निष्ठा के प्रभाव से मुग्ध होकर वहाँ रह गयीं और उन्होंने बिना कुछ उपकार किये वहाँ से न हटने का निश्चय कर लिया तथा भगवान् शंकर महर्षि अत्रि के ध्यान के बन्धन में ऐसे बँध गये कि वहाँ से न हट सके।

चौवन वर्ष के पश्चात् महर्षि अत्रि की समाधि टूटी। उठते ही उन्होंने जल माँगा। किंतु जल का तो वहाँ कहीं नाम भी न था। बेचारी अनसूया बहुत चिन्तित हुईं और कमण्डलु लेकर जल की खोज में चलीं। उनके पीछे-पीछे सब नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी भी चलीं। मार्ग में उन्होंने अनसूया से कहा-'देवि! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, मुझसे जो कहो, मैं करने के लिये तैयार हूँ।'

अनसूया ने पूछा-'हे कमलनयने! आप कौन हैं और कहाँ से पधारी हैं? आप जबतक मुझे

अपना पूरा परिचय न दें, तबतक मैं किसी प्रकार की प्रार्थना कैसे कर सकती हूँ?' अतः आप मुझे अपना यथार्थ परिचय दीजिये।'

मूर्तिमति भगवती गङ्गा ने कहा–'हे शुचिस्मिते! मैं गंगा हूँ और तुम्हारी पतिभक्ति तथा शिवभक्ति को देखकर तुम्हारे वशीभूत हूँ। मुझसे जो वर माँगना हो सो माँग लो।'

गङ्गाजी के ऐसे वचन सुनकर अनसूया ने उन्हें प्रणाम किया और कहा कि 'हे सरिद्वरे! मेरे पतिदेव अभी समाधि से उठे हैं और जल माँग रहे हैं। इस क्षेत्र में बहुत वर्षों से जल ही नहीं बरसा। मैं जल लाऊँ तो कहाँ से लाऊँ। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे जल दीजिये।'

देवी गङ्गा ने अनसूया से एक गड्ढा खोदवाकर तैयार कराया और क्षणभर में उस गर्त में प्रविष्ट होकर जलरूप हो गयीं। उसी समय वह गर्त जल से भर गया। यह देखकर अनसूया को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसमें से जल लेकर अपने पतिदेव के समीप चलीं और गङ्गाजी से कहने लगीं–'देवि! जबतक मेरे स्वामी यहाँ न आयें, तबतक आप इसी गर्त में निवास करें।'

गङ्गा बोलीं–'साध्वि! यदि तुम मुझे एक महीने की अपनी तपस्या का फल दे दो तो मैं इतनी देरतक इस गड्ढे में निवास कर सकती हूँ।' अनसूया ने उनका कथन स्वीकार कर लिया और जल लाकर महर्षि को दिया। महर्षि ने उस पवित्र जल से आचमन किया और उसके लोकोत्तर स्वाद को पाकर वे बड़े प्रसन्न एवं विस्मित हुए।

मुनि ने इधर–उधर दृष्टि फेरी तो आस–पास के सभी वृक्ष सूखे पाये और दिशाएँ आग से जलती पायीं। मुनि ने अनसूया से कहा कि 'मालूम होता है कि यहाँ बहुत दिनों से जल नहीं बरसा और इस जल का स्वाद विचित्र मालूम पड़ता है। जैसा जल मैं पिया करता था, यह तो वैसा नहीं हैं, इसलिये बताओ तुम यह जल कहाँ से लायी हो?'

अनसूया ने संकुचित होते हुए विनीत भाव से निवेदन किया कि 'हे पूज्यदेव! भगवान् शंकर की आराधना से और आपकी सेवा से गङ्गाजी मेरे ऊपर प्रसन्न होकर यहाँ आयी हैं, यह उन्हीं का पवित्र जल है।'

महर्षि अत्रि को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि–'हे सुन्दरी! तुम हँसी करती हो या सत्य कहती हो? तुम कुछ भी कहो, पर मुझे तो विश्वास नहीं होता। योगियों और देवों के लिये भी जो कार्य दुष्कर है, वह तुमसे कैसे हो सकता है? मुझे तुम्हारे कहने पर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो तुम चलकर मुझे वह स्थान दिखाओ। बिना देखे मैं विश्वास नहीं कर सकता।'

अनसूया ने मुनि को ले जाकर वह जलपूरित गर्त दिखा दिया । गङ्गाजी के दर्शन से मुनि के हर्ष का पारावार ही न रहा और वे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे कि 'हे देवि! आपने हम सबके ऊपर बड़ी कृपा की है। इस क्षेत्र का बड़ा भाग्य है कि आपका यहाँ शुभ आगमन हुआ है।

अब मेरी प्रार्थना यही है कि आप कभी भी इस स्थान का परित्याग न करें।' अनसूया ने भी इसी बात की प्रार्थना की।

उनका वचन सुनकर गङ्गाजी ने अनसूया से कहा कि 'हे पतिव्रते! यदि तुम शिवजी की एक वर्ष की पूजा का फल तथा अपने पतिदेव की सेवा का फल मुझे दे दो तो मैं यहाँ निवास कर सकती हूँ। दान, स्नान, यज्ञ और योग आदि किसी से भी मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि पातिव्रत से होती है। पतिव्रता को देखकर मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी किसी बात से नहीं। हे साध्वि! पतिव्रता स्त्री को देखकर मेरे भी पापों का नाश हो जाता है। इसलिये संसार के कल्याणार्थ यदि तुम अपने एक वर्ष के तप का फल देने को तैयार हो जाओ, तो मैं यहाँ अपना स्थिर निवास कर लूँगी।'

गङ्गाजी के ऐसे वचन सुनकर पतिव्रता अनसूया ने एक वर्ष के कठिन तप का पुण्य-फल उन्हें दे दिया, क्योंकि महापुरुष लोग स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों का उपकार ही करते हैं। ईख स्वयं तो कोल्हू में पेरी जाती है, परंतु दूसरों को मीठा रस देती है। इसी प्रकार सोना स्वयं तो हथौड़ी से पीटा जाता है, पर आभूषण के रूप में परिणत होकर दूसरे को विभूषित करता है। ऐसे दुर्लभ पुण्य-फल को पाकर गङ्गाजी ने उस स्थान में रहने का वचन दे दिया।

उसी समय अनसूया द्वारा संस्थापित उस पार्थिव शिवलिङ्ग में से पञ्चमुख महादेवजी का आविर्भाव हुआ। उन्हें देखकर उन दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। देवदेवेश्वर महादेव बोले-'साध्वि! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, जो वर माँगना हो, माँगो।'

अनसूया ने हाथ जोड़कर कहा कि 'महेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप सदा इस वन में निवास करें और अपना सर्वदुःखहर दर्शन देकर संसार को भव-बाधा से बचायें।' महर्षि अत्रि ने भी भगवान् की स्तुति की और वहाँ निवास करने के लिये प्रार्थना की।

आशुतोष भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और पार्वती तथा गङ्गाजी के साथ वे 'अत्रीश्वर महादेव' के नाम से उस आश्रम में निवास करने लगे। उसी दिन वह दीर्घ अवर्षण समाप्त हो गया और काले मेघों ने मूसलाधार जल बरसाकर क्षणभर में संसार का चिरकालीन ताप नष्ट कर दिया। उस वन में सब प्रकार के धान्य एवं फल-मूल उत्पन्न होने लगे। दूर-दूर से ऋषि लोग आकर सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले उस वन में बस गये। इस प्रकार अनसूया की तपस्या, महर्षि अत्रि के पुण्य एवं भगवान् शंकर की अनुकम्पा से उस वन में फिर नवजीवन आ गया। इस परम पावन तीर्थ में निवास करने से मनुष्य को अवश्य ही मुक्ति मिलती है। उस दिन से अविनाशीरूप से स्थित हुआ वह जल हाथ भर के गर्त में मन्दाकिनी के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

(शिवपु., कोटिरुद्रसं., अ. 2-4)

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के शिवोपासनांक से लिया गया है।)

❀❀❀❀❀❀